

दलित चेतना की बेचैनी और शरण कुमार लिंबाले

नमिता जायसवाल

एसिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, बेथुन कॉलेज, कोलकाता

सार: 'दलित' शब्द एक चिंगारी की तरह दबेकुचले लोगों की अभिव्यक्ति के साथ जुड़कर आज संघर्ष और अस्मिता का प्रतीक बन गया है। दलित साहित्य का सर्वप्रथम आगाज मराठी में हुआ। दलित साहित्य के प्रारंभिक दौर में अधिकांश कविताएं लिखी गईं, लेकिन सातवें दशक में अनेक दलित रचनाकारों ने कहानी विधा को अपनाया। दलित कहानी बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य के यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में सामने आती है। स्वतंत्रता, समता और बंधुता की मूल भावना दलित कहानी की मूल चेतना है।

शरणकुमार लिंबाले का 'छुआछूत' कहानी संग्रह दलित साहित्य को नए और समकालीन परिप्रेक्ष्य में रखता है और उसे भारतीय आयाम में देखने की जरूरत पर जोर देता है। इस संग्रह में न सिर्फ शरणकुमार के अनुभवों की गूँज उभरती है बल्कि भारत जैसे देश में सदियों से सवर्णों के जुल्मों का शिकार हुए दलितों, महिलाओं और बच्चों के दुख-दर्दों को बयां करते हुए वे नायक की तरह मिलते हैं। इस संग्रह की अनेक कहानियाँ 'जाति न पूछो', 'समाधि', 'हरिजन', 'रोटी', 'संबोधि', 'जवाब नहीं है मेरे पास', 'शांति', 'छुआछूत' आदि दलितों के पेट की आग, उनमें उभरती नैसर्गिक मानवीय महत्वकांक्षाओं के दमन की कथा है। निश्चित ही इस मराठी दलित कथनाकर ने दलित साहित्य के खेत में ऐसे क्रांतिकारी बीज बो दिए हैं, जिन्हें जितना काटोगे, वे उतना ही फसल देंगे।

बीज शब्द: पीड़ित, शोषित, खंडित, रौंदा हुआ, विनष्ट, कुचलना, दला हुआ, विघटित, टूटा हुआ।

आज के दौर में दलित विमर्श को किसी पहचान की जरूरत नहीं है। दलित जीवन की पीड़ा, त्रासदी और उसके बेचैन संघर्ष से हिन्दी का वृहत्तर साहित्य जगत धीरे-धीरे परिचित होता जा रहा है। दलित पीड़ा के कुछ ऐसे ही मर्मस्पर्शीय जीवन चित्र उकेरते हुए शरणकुमार लिंबाले ने अपनी कहानियों के माध्यम से एक ऐसा दरवाजा खोलते हैं, जो दलित जीवन के पीड़ा के साथ तो हमें रूबरू कराता है, उसके संघर्ष के सफर को बखूबी बयां करता है।

कहानी विधा के माध्यम से मराठी कथाकार शरणकुमार लिंबाले भारतीय समाज में व्याप्त दलितों के शोषण, दोहन, उत्पीड़न का आकलन करते हैं। भोगे हुए यथार्थ की पीड़ा पर उनकी रचनायें खड़ी होती हैं, वे केवल धर्मिय व्यवस्था को ही नहीं बल्कि मानवीय संवेदना को भी ललकारती हैं। उनके अपने शब्दों में "उस हरामी परंपरा को जिसने हमें अछूत ठहराया है" ही अपने आप में एक सम्पूर्ण दलित व्यथा की व्याख्या है।

शरणकुमार लिंबाले जी का कहानी संग्रह 'छुआछूत', 'परिवेश के दायरे', 'जहर है मेरी जिंदगी की रोटी में', और 'औरत', 'आईना हो तुम' तीन खण्डों में विभक्त है। संग्रह की अनेक कहानियाँ जिनमें 'हरिजन', 'रोटी', 'संबोधि', 'जाति न पूछो', 'जवाब नहीं है मेरे पास', 'छुआछूत', 'शांति', 'सुजाता' आदि दलितों के पेट की आग, उनमें उभरती नैसर्गिक मानवीय महत्वकांक्षाओं के दमन की कथा है। उनकी 'संबोधि' कहानी का दलित कथाकार अमर बनसोडे अपने शिक्षक प्रोफ़ेसर डॉ. देशपांडे को जब अपना काव्य संग्रह 'सूर्य' भेंट करता है तो वह उसे ग्रहण करते हुए आर्शीवचन देते हुए कहते

हैं- “बहुत बढ़िया पुस्तक निकली है। मैं पढ़कर लिखूंगा इस पर। . लेकिन तुम्हारे साहित्य में दूसरों का द्वेष, प्रतिशोध की भावना नहीं होनी चाहिए। खूनखराबा करके हमें क्या मिलने वाला है? मराठी के पहले दलित लेखक ज्ञानेश्वर महाराज हैं। पुराणपंथियों ने उन्हें बहुत सताया।”¹ वही पुस्तक बनसोडे को कबाड़ी की दुकान पर मिलती है। वह पुस्तक डॉ. देशपांडे के बाद कई हाथों से गुजरता, कबाड़ी के यहाँ उदीयमान कवि विनोद शहा द्वारा पहुँचता है। फिर वहाँ से सदाफुलेजी के यहाँ से होता हुआ अमर बनसोडे के घर वापस पहुँच जाता है। बनसोडे की तहकीकात उसे विनोद शहा तक पहुँचा देती है। जो पहले तो उसकी कविताओं की तारीफ करता है, परन्तु जब बनसोडे उसे कबाड़ी के यहाँ बेचा गया बताता है तब शहा कहता है कि प्रो. देशपांडे ने उसे पुस्तक पढ़ने को दी थी क्योंकि वह स्वयं कविता नहीं पढ़ते। कबाड़ी के यहाँ देने की वजह बताता हुआ फीके चेहरे से शहा कहता है - “कुछ अश्लील शब्द हैं इसमें और इसकी भाषा-शैली भी कुछ कठिन है। घर में सब लोग पुस्तकें पढ़ते हैं। यह पुस्तक उनके हाथ लग गई तो अकारण हो-हल्ला मचाएँगे।”² दलित साहित्य को प्रोत्साहन देने वाले सवर्णों के दोहरे चेहरे का पर्दाफाश करते हुए लेखक दलितों के विद्रोही स्वर को कुचल देने वाले सवर्णों के षडयंत्र को सामने लाता है।

‘जवाब नहीं है मेरे पास’ कहानी में लेखक की पैनी दृष्टि सेवार्थी सामाजिक संगठनों के खोखलेपन एवं व्यवसायीकरण के नंगेनाच का पर्दाफाश करती है। समाज सेविकाओं के सेवा धर्म को रेखांकित करता इन औरतों के बारे में विजय कहता है- “गरीबों से साक्षात्कार करती हैं। उसे छापती हैं। पैसा कमाती हैं। नाम भी हो जाता है। हमारे दुःख की पूँजी पर इन लोगों ने धंधा शुरू कर दिया है। इनसे जवाब तलब करना होगा।”³ समाज उत्थान के नाम पर विदेशों से पैसा बटोरने का धंधा शुरू हो गया है। ऐसे गैर सरकारी संगठनों को घृणित और अनैतिक आचार पर कोई अंकुश नहीं है। इनकी असलियत समझ पाने के बाद भी लाचार दलितों के पास प्रतिवादी क्षमता नहीं है। रमेश के आक्रोश का ज्वालामुखी उबल रहा है। वह तथाकथित भारतीय संस्कृति की धजियां उड़ाता कहता है- “हजार बरसों तक हम लाचार थे, गुलाम थे। किसी ने हम पर दया दिखाई, गधे को गंगा पिला दी, लेकिन हमें अंजुली भर पानी में महरूम रखा। गोमूत्र को पवित्र माना, लेकिन हमारे स्पर्श को अपवित्र कहा। चींटियों को शक्कर खिलाई, लेकिन हमें सीढ़ी के पास भी पहुँचने नहीं दिया। इनके पानी भरने के स्थान पर जानवर पानी पी सकते हैं, लेकिन समान अधिकार से पानी पीने के लिए हमें अपनी जान गँवानी पड़ती है। यह है इस संस्कृति का बड़प्पन।”⁴ दलित अस्मिता पर सवालिया निशान लगाने वाली दो सशक्त कहानियां ‘हरिजन’ एवं ‘जाति न पूछो.’ दलितों और सवर्णों के बीच एक विखण्डनधर्मी सी स्थिति पैदा करती है। इसकी पूरी जिम्मेदारी सवर्णों के अमानवीय आचरण की बनती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस संदर्भ में लिखते हैं- “सवर्ण वर्चस्व के विरुद्ध दलित लेखन में जहाँ अपनी अस्मिता की तलाश है वहीं मानवीय मूल्यों की पक्षधरता को भी सर्वोपरि माना है। मनुष्य की स्वतंत्रता की भावना और उसकी अभिव्यक्ति दलित साहित्य की प्राथमिकताओं में है। मानव मुक्ति के सभी रूपों और अन्तरंगों का दर्शन दलित साहित्य में दिखाई पड़ता है।”⁵

‘हरिजन’ कहानी में मस्जिद में लगने वाली पाठशाला में ब्राह्मण शिक्षक कुलकर्णी का आगमन होता है, तो गाँव की स्थिति ही बदल जाती है। उनके आगमन के पहले उस गाँव में एक भी ब्राह्मण नहीं था और उस गाँव के बारे में कहा जाता था “जिस गाँव में ब्राह्मण देवता नहीं उस गाँव में झगड़ा-टंटा नहीं।”⁶ उनके आगमन के बाद गाँव में झगड़े के बीज प्रस्फुटित होने लगे। पहले मुहर्रम एव हिन्दू त्यौहारों दोनों में पाठशाला की छुट्टी हुआ करती थी, परन्तु कुलकर्णी जी ने इस बार मुहर्रम पर पाठशाला की छुट्टी रद्दकर हिन्दू-मुसलमानों में विखंडन के बीज रोप दिए। इस घटना ने दो पक्ष तैयार कर दिये। स्थापित शांति सौहाद्र का माहौल, अशांति और शत्रु भाव से भर गया। कुलकर्णी जी ने जो भेदभाव का बीज बोया था उसके प्रभाव में कथावाचक का यह कहना था कि “हमारे घर में दो ईमानदार प्राणी थे। एक हमारा कुत्ता और दूसरा कोंड्या महार। खाए हुए अन्न के प्रति निष्ठावान। कोंड्या की अपेक्षा हम कुत्ते पर लाड़ जताते थे। कुत्ता-घर-भर में घूम सकता था, लेकिन कोंड्या को सीढ़ी तक ही आने की इजाजत थी। हम लोग कुत्ते को गले लगाकर उसके साथ खेलते थे। कुत्ते के साथ हमारा मेल-जोल

था, लेकिन कौड्या से हमें हमेशा दूर ही रखा जाता था।⁷ यह कहानी हाशिये पर खड़े दलित समाज के प्रति सवर्णों के अमानवीय अत्याचार का दहकता दस्तावेज सा है। कुलकर्णी के तबादले के बाद हरिजन शिक्षक का आना तथा उनके साथ किया जाने वाला अमानवीय व्यवहार, उनकी कुंठा, उनकी बेचारगी सवर्ण हिन्दू धर्मिय मानसिकता के माथे पर कलंक जैसा है। गनीमत है कि पाठशाला मस्जिद में लगती थी। अगर मंदिर में पाठशाला लगती तो हरिजन मास्टर वहाँ कैसे जा सकता था। कालक्रम में हरिजन मास्टर का तबादला हो गया।

‘जाति न पूछो.’ कहानी के महार जाति के अछूत हणम्या की दोस्ती कथाकार लिंगायत ब्राह्मण से इस कदर सौहाद्रपूर्ण थी कि वह हणम्या की बहन की शादी में उसके गाँव तो जाता है परन्तु उसके ब्राह्मणत्व वाले संस्कार उसके यहाँ खाने, पीने, सोने, रहने को प्रतिबंधित किये रहते हैं। ‘मेरे लिए उन्होंने अलग रसोई पकाई। रहने का भी अलग प्रबंध कर दिया। उनकी दरिद्रता से मुझे घिन आ जाती। उनके घर का पानी पीते हुए मेरा दम घुटने लगता था। मुँह का कौर गले से नीचे उतरता नहीं था।⁸ कथाकार हणम्या को भी अपने गाँव ले जाता है तथा उसका परिचय महार नहीं गड़ेरिया जाति के रूप में देता है। हणम्या में इस बात के लिये अपराधबोध एव हीनभावना एक साथ उभरती है। कथाकार का जिगरी एवं स्नेही मित्र होने के नाते कथाकार के माता-पिता उसे बहुत लाड़ प्यार देते हैं। हणम्या वहाँ मित्र द्वारा दिये गये पुजारी के छद्म नाम से जाना जाता है। कथाकार की माँ को बीमारी की हालत में खून देने के लिए हणम्या (पुजारी) प्रस्तुत होता है। इसी बीच माँ को अस्पताल में एक महार महिला से पुजारी की असलियत का पता चल जाता है तथा हणम्या का रक्त ग्रहण करने की बात पर अपने बेटे पर बिफरती हुई कहती है- ‘तू उस महार के बच्चे को घर ले आया, देवधर्म भ्रष्ट कर दिया। इसी पाप की पीड़ा मैं भोग रही हूँ। अब इससे मुझे मुक्ति नहीं। मैं मर गई तो भी कोई बात नहीं। लेकिन मेरे शरीर में महार का खून नहीं जाएगा। तेरे बापू मुझे गंगा नहा ले आए। और तू मेरे शरीर में महार का खून भर देना चाहता है? तू पापी है।⁹

लेखक ने बड़ी बारीकी से यहाँ अज्ञान और अधर्म से भरे परंपरागत कुसंस्कारजनित मनुष्य से मनुष्य की उस घृणा बोध को उकेरा है। जिस घृणा बोध की फसल को हिन्दू धर्म के तथाकथित कर्णधार सदियों से उगते काटते रहे हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जातिवाद की घृणात्मक प्रवृत्ति पर अपनी पुस्तक ‘दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ’ की भूमिका में लिखते हैं- ‘दलित कहानियों में जो दलित पात्रों की जद्दोजहद है, वह सामाजिक चेतना है, वही दलित कहानियों की साहित्यिक गुणवत्ता भी है जो साहित्य को जड़ होने की जगह उसे जीवन्त बनाती है। दलित कहानियाँ समाज में रचे-बसे जातिवाद की भयावह स्थितियों से संघर्ष करने के साथ-साथ समाज में घृणा की जगह प्रेम की पक्षधरता दिखाती है। जीवन में प्रेम ही समाज को विकास की ओर ले जाता है, न कि घृणा।¹⁰

‘शांती’ कहानी में कार्यालय में झाड़ू लगाने वाली बायड़ी का कार्पोरेटर द्वारा बलात्कार किया गया है। उसे लेकर कार्यकर्ता नेता के घर पहुँचते हैं। नेताजी बायड़ी की भरी-पूरी जवानी को देखकर सोचते हैं- ‘मैंने भी एक बार शांती पर बलात्कार किया था। शांती हमारे घर की कामवाली थी। वह दिन और वह समय आज भी चित्रवत आँखों के सामने नाच उठता है। सुमती सहेली के पास गई हुई थी और घर में मैं अकेला ही था।¹¹

बायड़ी और शांति के लिये सवर्णों द्वारा उनका दैहिक शोषण किया जाना उनकी स्वीकृत प्रचलित सामाजिक परंपरा है। सवर्ण नारियों की मानसिकता में भी अछूत नारी पर किया बलात्कार उनके अपने नारीत्व एवं देह दूषण की त्रासद भाव से कहीं नहीं जुड़ा है। मोहनदास नैमिशराय ‘छुआछूत’ कहानी संग्रह की भूमिका में लिखते हैं- ‘औरत का स्पर्श कितना नाजुक होता है और कितना विस्फोटक भी। उससे अधिक विस्फोट करती है दलित के लिए जाति। जाति भेद होते ही औरत काँटों में बदल जाती है। जो शरीर को तो लहलुहान करती ही है, मन को भी छलनी करती है। शरणकुमार लिंबाले ने शांती, सुजाता, सोनी, नसरिन, रजनी, नीलू और मेघा कहानियों में उस आँच को चित्रित किया है, जो किसी जवान जिस्म से नहीं उभरती बल्कि सदियों से तथाकथित सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली जातियों के भीतर से दलितों को जलाने के लिए उठती है।¹²

शरणकुमार लिंबाले की कहानियाँ हिन्दू समाज के सवर्ण-सुखाय, सवर्ण हिताय की पूर्ति करने वाले अमानवीय धर्म तथा परंपरा नियामक पुरोहितों, पंडाओं, धर्माचारियों से दो टूक सवाल जवाब करती है। आर्य सभ्यता में निर्मित मनु की परंपरा क्या यहाँ के दलितों के दमन के लिये ही प्रतिपादित हुई थी? भारत भूमि के असली वारिस का, यहाँ के भू संपदा के सही अधिकारियों की वंचना का षड्यंत्र जघन्य अपराध ही तो है। हिन्दू समाज के ठेकेदारों ने दूर रखने का षड्यंत्र रचने की कुत्सा किस आधार पर की यह एक सुलगता सवाल है। इसे हिन्दू धर्म के ठेकेदारों की विचित्र विडंबना ही कही जायेगी। इस आचार से उन्होंने धर्म का विखण्डन ही नहीं किया, बल्कि दुनिया की नजरों में इसे कलंकित भी किया है। जिस धर्मान्तरण को लेकर इन दिनों इतना शोर गुल मच रहा है, आज आदिवासी जन जिस तरह से क्रिश्चन और बौद्ध धर्म अपना रहे हैं, क्या इसके मूल में हिन्दू धर्माधिकारियों का अमानवीय आचरण नहीं है? सांप्रदायिकता क्या स्वयं हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सवर्ण बनाम दलित के रूप में अवस्थित नहीं है? लिंबाले का दलित लेखन एक ओर जहाँ सवर्णों की ज्यादातियाँ, उनकी मानसिकता, उनकी अमानवीय सोच की अभिव्यक्ति है, वहीं दलित समाज के लिये अपनी अस्मिता गढ़ने का आह्वान भी है। उनकी रचनायें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को तरजीह दिये जाने का आह्वान करती है। साथ ही दलित लेखन को आक्रमकता से बचाये हुये एक पारदर्शी एवं सर्वस्वीकृत, सर्वग्राह्य साहित्य परंपरा के निर्माण का संकेत भी देती है।

संदर्भसूची

- 1) लिंबाले, शरणकुमार, छुआछूत (कहानीसंग्रह), वाणीप्रकाशन, नईदिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 73-74.
- 2) वही, पृष्ठ 76.
- 3) वही, पृष्ठ 96.
- 4) वही, पृष्ठ 97.
- 5) वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलितसाहित्यकासौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्णप्रकाशन, नईदिल्ली, पहलासंस्करण 2001, पृष्ठ 62.
- 6) लिंबाले, शरणकुमार, छुआछूत (कहानीसंग्रह), वाणीप्रकाशन, नईदिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 39.
- 7) वही, पृष्ठ 40.
- 8) वही, पृष्ठ 85.
- 9) वही, पृष्ठ 88-89.
- 10) वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलितसाहित्य अनुभव, संघर्षएवंयथार्थ, राधाकृष्णप्रकाशन, नईदिल्ली, पहलासंस्करण 2013, पृष्ठ 8.
- 11) लिंबाले, शरणकुमार, छुआछूत(कहानीसंग्रह), वाणीप्रकाशन, नईदिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 118.
- 12) वही, पृष्ठ 12-13.